2010(3) eILR(PAT) SC 1

[2010] 3 उम. नि. प. 122

रामदास अठावले

बनाम

भारत संघ और अन्य

29 मार्च, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन्, न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया, न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन, न्यायमूर्ति बी. सुदर्शन रेड्डी और न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम्

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 87(1) – संसद् के सत्रों का पूर्व वर्ष में अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाना – उसी सत्र की बैठकें अगले वर्ष पुनः आरंभ करना – अनुच्छेद 87(1) में "वर्ष के प्रथम सत्र" शब्दों का संबंध पूर्व वर्ष में स्थगित सत्र की कार्यवाही पुनः आरंभ करने से नहीं है इसलिए पूर्व वर्ष में स्थगित सत्र की बैठकें अगले वर्ष पुनः आरंभ करना नए सत्र का आरंभ होने की कोटि में नहीं आता है और इसीलिए राष्ट्रपति के विशेष अभिभाषण की कोई आवश्यकता नहीं है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 122 और 32 – संसद् की कार्यवाहियों की जांच – न्यायालय की शक्ति – उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 32 के अधीन की गई किसी कार्यवाही में संसद् की कार्यवाहियों की वैधता की जांच नहीं कर सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – मूल अधिकार – जब कभी कोई व्यक्ति विधि के किसी उपबंध या किसी सांविधानिक उपबंध के अतिक्रमण की शिकायत करता है तो उसमें मूल अधिकार का भंग स्वतः ही अंतर्वलित नहीं होता क्योंकि उसके लिए केवल अनुच्छेद 32 ही लागू होता है ।

प्रस्तुत रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन लोक सभा के एक सदस्य द्वारा फाइल की गई है जिसके द्वारा तारीख 29 जनवरी, 2004 से प्रारंभ होने वाली लोक सभा की कार्यवाहियों की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि राष्ट्रपति ने, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 87 में परिकल्पित है, संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण नहीं किया है । इस रिट याचिका में यह प्रार्थना की गई है कि ऐसी समुचित रिट या निदेश या आदेश जारी किया जाए जिसके द्वारा यह घोषित किया जाए कि तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना द्वारा बुलाया गया लोक सभा का सत्र वर्ष 2004 का प्रथम सत्र है और तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना के अनुसरण में हुई लोक सभा की कार्यवाहियां असांविधानिक, अवैध, अकृत और शून्य हैं । याची द्वारा स्थापित मामला यह है कि तारीख 29 जनवरी, 2004 को प्रारंभ होने वाला सत्र वर्ष 2004 में लोक सभा का प्रथम सत्र था और जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 87(1) के अधीन उपबंधित और अपेक्षित है, इसमें राष्ट्रपति द्वारा संसद् को उसके आह्वान का कारण बताते हुए कोई अभिभाषण नहीं किया गया था । याची की दलील यह थी कि "प्रथम सत्र" से वह सत्र अभिप्रेत है, जो किसी वर्ष में किसी समय प्रथम बार आयोजित किया जाता है । उसके अनुसार, जो सत्र तारीख 29 जनवरी, 2004 को प्रारंभ हुआ था वह वर्ष 2004 का सदन का प्रथम सत्र था । इसके पश्चात् बैठकें 5 फरवरी, 2004 तक चलीं । इस संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया है कि तेरहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को प्रारंभ हुआ था और उसे तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । इसके पश्चात्, तारीख 20 जनवरी, 2004 को लोक सभा के महासचिव ने तेरहवीं लोक सभा के सभी सदस्यों को यह कथन करते हुए सूचित किया कि लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन अध्यक्ष ने यह निदेश दिया है कि लोक सभा, जो कि तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी, अपनी बैठकें तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ करेगी । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में, लोक सभा का शीतकालीन सत्र तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ था और उसे तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । तारीख 29

जनवरी, 2004 को उसकी बैठकें फिर से चालू करना कल्पनातीत रूप में नया सत्र आरंभ होने के रूप में अभिलक्षित नहीं होता है । सदन ने मात्र अपनी बैठकें पुनः आरंभ कीं और वह सत्र चालू हुआ जो कि वास्तव में तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ था । जैसा कि अभिलेख से प्रकट होता है, सदन तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था, उसकी बैठकों को पुनः आरंभ करना उसी सत्र को उसके अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिए जाने के पश्चात् पुनः बुलाने के अलावा और कुछ नहीं है । यह उसी सत्र का दूसरा भाग है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब कभी सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने के पश्चात् पुनः आरंभ होता है तो उसका कार्य जारी रखने के प्रयोजनार्थ पुनः आरंभ होना सत्र के प्रारंभ होने की कोटि में नहीं आता । इस मामले में, सदन की बैठक तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ होना वर्ष 2004 के प्रथम सत्र का आरंभ होने की कोटि में नहीं आता है । (पैरा 14 और 23)

अनुच्छेद 87(1) में प्रयुक्त "वर्ष के प्रथम सत्र" शब्दों का संबंध स्थगित सत्र के पुनः आरंभ होने से नहीं है । सत्र राष्ट्रपति द्वारा सदन को अधिवेशन के लिए आहूत करने के साथ आरंभ होता है । अनुच्छेद 85 संसद् का सत्र आहूत करने, लोक सभा के सत्रावसान और विघटन के संबंध में है । सांविधानिक उपबंध में यह अपेक्षित नहीं है कि संसद् के ऐसे प्रत्येक सत्र का आह्वान किया जाए, जो कि राष्ट्रपति द्वारा आहूत करने के अनुसरण में उसका सत्र आरंभ होने के पश्चात् अपने ही कारणों से स्थगित कर दिया गया था । जब किसी सदन का सत्रावसान हो जाता है और उसके पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 85(2) के अधीन उसका आह्वान किया जाता है केवल तभी अनुच्छेद 87(1) के अधीन यथा-उपबंधित नए सत्र के प्रतिनिर्देश से राष्ट्रपति द्वारा विशेष अभिभाषण अपेक्षित होता है जिससे कि संसद् को उसके आह्वान के कारण बताए जा सकें । यदि कोई सत्र पूर्व वर्ष में अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जाता है और अगले वर्ष उसी सत्र की बैठकें फिर से आरंभ होती हैं तो ऐसे किसी विशेष अभिभाषण की आवश्यकता नहीं होती । (पैरा 15)

अध्यक्ष सदन के विशेषाधिकारों का संरक्षक और सभी अवसरों पर उसका प्रवक्ता और प्रतिनिधि होता है । वह उसके नियमों और प्रक्रिया का निर्वचनकर्ता होता है और बहस के क्रम को नियंत्रित और विनियमित करने

और व्यवस्था बनाए रखने की शक्ति उसमें निहित होती है । अध्यक्ष ने अपनी निहित शक्तियों के आधार पर लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन अपनी शक्ति के तात्पर्यित प्रयोग में, लोक सभा के महासचिव के माध्यम से तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना जारी कराई जिसके द्वारा लोक सभा की बैठकें जो कि 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी, फिर से आरंभ करने का निदेश दिया गया । यह आवश्यक रूप से पूर्णतः संसद् की प्रक्रिया से संबंधित मामला है कि अध्यक्ष के निदेशानुसार तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ हुई बैठकें चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के रूप में मानी जानी थी अथवा नहीं । सदन की बैठकें पुनः आरंभ करने के पश्चात् की गई कार्यवाहियों और किए गए कामकाज की वैधता की परीक्षा और जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन की गई किसी कार्यवाही में इस न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती । अध्यक्ष का सदन को तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने संबंधी विनिश्चय और भाग 2 में उसकी बैठकें पुनः आरंभ करने संबंधी निदेश का संबंध आवश्यक रूप से संसद् की कार्यवाहियों से हैं और वह प्रक्रियात्मक प्रकृति का है । न्यायालयों द्वारा अध्यक्ष के निदेशों के अनुसरण में उसकी बैठकें पुनः आरंभ करने के पश्चात् उसमें किए गए कार्य और उसकी कार्यवाहियों की विधिमान्यता की जांच नहीं की जा सकती । (पैरा 26 और 30)

यह भी सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 32 में सांविधानिक उपचार के अधिकार की गारंटी दी गई है और इसका संबंध केवल संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रवर्तन से है और जब तक किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन का प्रश्न उद्भूत नहीं होता तब तक अनुच्छेद 32 लागू नहीं होता है । यह सुस्थापित है कि अनुच्छेद 32 के अधीन कोई याचिका तब तक कायम नहीं रखी जा सकती जब तक यह दर्शित नहीं कर दिया जाता कि याची का कोई मूल अधिकार है । जब कोई व्यक्ति यह शिकायत करता है और दावा करता है कि विधि के किसी उपबंध या किसी सांविधानिक उपबंध का अतिक्रमण हुआ है तो इसमें मूल अधिकार का भंग स्वतः ही अंतर्वलित नहीं होता क्योंकि इसके प्रवर्तन के लिए केवल संविधान का अनुच्छेद 32 ही लागू होता है । इस बात को स्वीकार करना संभव नहीं है कि विधि या किसी सांविधानिक उपबंध के भंग का अभिकथन मूल अधिकार के भंग में की गई कोई कार्रवाई है । (पैरा 37)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 237 : **2002 का विशेष निर्देश सं. 1** ;	19
[1990]	(1990) 4 एस. सी. सी. 239 : **नार्दर्न कारपोरेशन** बनाम **भारत संघ** ;	37
[1984]	(1984) 2 एस. सी. सी. 183 : **आर. एस. नायक** बनाम **ए. आर. अंतुले** ;	35
[1975]	(1975) सप्ली. एस. सी. सी. 1 : **इंदिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण और एक अन्य** ;	31
[1965]	[1965] 1 एस. सी. आर. 413 : **भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश** ;	29,31
[1960]	ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 1186 : **एम. एस. एम. शर्मा** बनाम **डा. श्री कृष्ण सिन्हा** ।	32

मूल (सिविल) अधिकारिता : 2004 की रिट याचिका (सिविल) सं. 86.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एच. के. पुरी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जी. ई. वाहनवती, महान्यायवादी, (श्रीमती) इंदिरा जयसिंह, अपर महासालिसिटर, ए. मारियापुथम, ज्येष्ठ अधिवक्ता, देवदत्त कामत, टी. ए. खान, विमल दुबे, चिनमाय प्रदीप शर्मा, (श्रीमती) अनिल कटियार और पी. परमेश्वरन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. सुदर्शन रेड्डी ने दिया ।

न्या. रेड्डी – यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन लोक सभा के एक सदस्य द्वारा फाइल की गई है जिसके द्वारा

तारीख 29 जनवरी, 2004 से प्रारंभ होने वाली लोक सभा की कार्यवाहियों की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि राष्ट्रपति ने, ज़ैसा कि संविधान के अनुच्छेद 87 में परिकल्पित है, संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण नहीं किया है । इस रिट याचिका में यह प्रार्थना की गई है कि ऐसी समुचित रिट या निदेश या आदेश जारी किया जाए जिसके द्वारा यह घोषित किया जाए कि तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना द्वारा बुलाया गया लोक सभा का सत्र वर्ष 2004 का प्रथम सत्र है और तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना के अनुसरण में हुई लोक सभा की कार्यवाहियां असांविधानिक, अवैध, अकृत और शून्य हैं ।

2. याची द्वारा स्थापित मामला यह है कि तारीख 29 जनवरी, 2004 को प्रारंभ होने वाला सत्र वर्ष 2004 में लोक सभा का प्रथम सत्र था और जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 87(1) के अधीन उपबंधित और अपेक्षित है, इसमें राष्ट्रपति द्वारा संसद् को उसके आह्वान का कारण बताते हुए कोई अभिभाषण नहीं किया गया था । याची की दलील यह थी कि "प्रथम सत्र" से वह सत्र अभिप्रेत है, जो किसी वर्ष में किसी समय प्रथम बार आयोजित किया जाता है । उसके अनुसार, जो सत्र तारीख 29 जनवरी, 2004 को प्रारंभ हुआ था वह वर्ष 2004 का सदन का प्रथम सत्र था । इसके पश्चात् बैठकें 5 फरवरी, 2004 तक चलीं ।

3. हमारे समक्ष इस संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया है कि तेरहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को प्रारंभ हुआ था और उसे तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । इसके पश्चात्, तारीख 20 जनवरी, 2004 को लोक सभा के महासचिव ने तेरहवीं लोक सभा के सभी सदस्यों को यह कथन करते हुए सूचित किया कि लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन अध्यक्ष ने यह निदेश दिया है कि लोक सभा, जो कि तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी, अपनी बैठकें तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ करेगी ।

4. याची के विद्वान काउन्सेल ने यह निवेदन किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 87(1) में यथा-उपबंधित आज्ञापक अपेक्षा के निबंधनानुसार राष्ट्रपति को प्रत्येक वर्ष सत्र के प्रारंभ होने पर संसद् के दोनों सदनों को संबोधित करना होता है और संसद् को उसके आह्वान के कारण बताने होते हैं । यह दलील दी गई थी कि प्रत्येक वर्ष प्रथम सत्र का

प्रारंभ होना प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के प्रतिनिर्देश से होना चाहिए और वर्ष से वह वर्ष अभिप्रेत होगा जिसकी गणना ब्रिटिश कलेंडर के अनुसार की जाती है । यह दलील दी गई थी कि तारीख 29 जनवरी, 2004 से हुई लोक सभा की बैठकें असांविधानिक थीं या राष्ट्रपति द्वारा संसद् के दोनों सदनों के विशेष अभिभाषण के अभाव में इसकी बैठक हो ही नहीं सकती थी । लोक सभा की बैठक राष्ट्रपति द्वारा विशेष संबोधन के पश्चात् ही की जा सकती थी ।

5. विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में संसद् का शीतकालीन सत्र तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को प्रारंभ हुआ था और वह तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन महासचिव की तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना के अनुसरण में सदन ने उस स्थगित सत्र की बैठक फिर से प्रारंभ की । यह दलील दी गई थी कि तारीख 29 जनवरी, 2004 को प्रारंभ हुई बैठक किसी नए सत्र का प्रारंभ नहीं था बल्कि वह शीतकालीन सत्र, जो कि तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को स्थगित कर दिया गया था को जारी रखते हुए हुई थी । विद्वान महान्यायवादी ने इसके आगे यह दलील दी कि अनुच्छेद 87 में वर्ष का "प्रथम सत्र" शब्द स्थगित सत्र की बैठक पुनः प्रारंभ करने के प्रतिनिर्देश नहीं हो सकता । यह किसी नए सत्र के प्रतिनिर्देश होना चाहिए । यह निवेदन किया गया था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 87(1) के निर्वचन के प्रयोजन के लिए किसी स्थगित सत्र को पुनः आरंभ करने और किसी नए सत्र को बुलाने के बीच विभेद को ध्यान में रखना होगा । यह निवेदन किया गया था कि अध्यक्ष, किसी स्थगित सत्र को पुनः आरंभ करने के लिए लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन ऐसी सूचना जारी करने का निदेश दे सकता है जिसमें सदस्यों को सत्र की अगली बैठक की सूचना दी गई हो । किन्तु यदि सदन का सत्रावसान हो जाता है तो केवल राष्ट्रपति ही संसद् का अगला सत्र बुला सकता है । यह दलील दी गई थी कि प्रस्तुत मामले में, अनुच्छेद 87(1) लागू नहीं होता है क्योंकि शीतकालीन सत्र तारीख 29 जनवरी, 2004 को केवल पुनः आरंभ हुआ था और कोई नया सत्र नहीं बुलाया गया था ।

6. इन दलीलों पर विचार करने के लिए हम घटनाओं के क्रम का अनुसरण करेंगे और प्रत्येक घटना की सांविधानिकता की परीक्षा करेंगे जिससे स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होगा कि मामले का दायरा उससे संकीर्ण

है जो कि प्रकट कराया गया है ।

7. यूनाइटेड किंगडम में, क्वीन और संसद् के दोनों सदन विधान मंडल गठित करते हैं जिससे कि क्वीन विधान मंडल का एक अभिन्न अंग होती है ।

8. भारत में यही मानक अंगीकृत किया गया है । संविधान के अनुच्छेद 79 में यह उपबंध है कि संघ के लिए एक संसद् होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम राज्य सभा और लोक सभा होंगे । अनुच्छेद 83(2) में यह उपबंध है कि लोक सभा, यदि पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक नहीं रहेगी, इससे अधिक नहीं और पांच वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति का परिणाम लोक सभा का विघटन होगा, सिवाय आपात की उद्घोषणा के दौरान पांच वर्ष की अवधि ऐसी अवधि के लिए बढ़ाई जा सकेगी जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी और ऐसी उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने के पश्चात् उसका विस्तार किसी भी दशा में छह मास की अवधि से अधिक नहीं होगा । अनुच्छेद 85(1) के अधीन राष्ट्रपति को संसद् के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, आहूत करेगा जिससे कि उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा । अनुच्छेद 85(2) में निम्न प्रकार उपबंधित है :–

"राष्ट्रपति, समय-समय पर -

(क) सदनों का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा;

(ख) लोक सभा का विघटन कर सकेगा ।"

9. अनुच्छेद 86 सदनों में अभिभाषण के और उनको संदेश भेजने के राष्ट्रपति के अधिकार के संबंध में है ।

10. संविधान की स्कीम से, जैसा कि इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट अनुच्छेदों के सारांश से सुस्पष्ट है, यह प्रकट होता है कि संघ की संसद् राष्ट्रपति और राज्य सभा तथा लोक सभा से मिलकर बनेगी और लोक सभा, यदि पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो, अपने प्रथम अधिवेशन की तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी और पांच वर्ष का अवसान सदन के विघटन के रूप में प्रवर्तित होता है सिवाय आपात की घोषणा के दौरान जबकि पांच वर्ष की अवधि, जो एक बार में एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए और ऐसी उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने

के पश्चात् किसी भी दशा में छह मास से अनधिक अवधि के लिए बढ़ाई जा सकेगी । राष्ट्रपति इस सांविधानिक आज्ञा के अधीन है कि वह समय-समय पर संसद् के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे अधिवेशन के लिए आहूत करे । सदन को समय-समय पर आहूत करने और सदन या दोनों में से किसी सदन का सत्रावसान करने और लोक सभा को भंग करने की शक्ति केवल राष्ट्रपति में निहित है । राष्ट्रपति को संसद् के किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति अपेक्षित होती है । वह संसद् में उस समय लंबित किसी विधेयक के संबंध में संदेश या कोई अन्य संदेश संसद् के किसी भी सदन को भेज सकेगा और जिस सदन को संदेश भेजा जाता है उस सदन को उस पर विचार करना अपेक्षित होता है ।

11. हमारे प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 87 महत्वपूर्ण अनुच्छेद है और वह निम्नलिखित रूप में है :–

> "**87. राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण** – (1) राष्ट्रपति लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद् को उसके आह्वान के कारण बताएगा ।
>
> (2) प्रत्येक सदन को प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियत करने के लिए उपबंध किया जाएगा ।"

12. अनुच्छेद 87 के पठन मात्र से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि (क) राष्ट्रपति लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ में ; और (ख) प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में अभिभाषण करेगा ।

13. प्रश्न यह है कि क्या इस मामले में संविधान के अनुच्छेद 87(1) के अधीन यथा-उपबंधित अपेक्षा का अनुपालन करने में कोई असफलता हुई थी ?

14. प्रस्तुत मामले में, लोक सभा का शीतकालीन सत्र तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ था और उसे तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । तारीख 29

जनवरी, 2004 को उसकी बैठकें फिर से चालू करना कल्पनातीत रूप में नया सत्र आरंभ होने के रूप में अभिलक्षित नहीं होता । सदन ने मात्र अपनी बैठकें पुनः आरंभ कीं और वह सत्र चालू हुआ जो कि वास्तव में तारीख 2 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ था । जैसा कि अभिलेख से प्रकट होता है, सदन तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था, उसकी बैठकों को पुनः आरंभ करना उसी सत्र को उसके अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिए जाने के पश्चात् पुनः बुलाने के अलावा और कुछ नहीं है । यह उसी सत्र का दूसरा भाग है ।

15. अनुच्छेद 87(1) में प्रयुक्त "वर्ष के प्रथम सत्र" शब्दों का संबंध स्थगित सत्र के पुनः आरंभ होने से नहीं है । सत्र राष्ट्रपति द्वारा सदन को अधिवेशन के लिए आहूत करने के साथ आरंभ होता है । अनुच्छेद 85 संसद् का सत्र आहूत करने, लोक सभा के सत्रावसान और विघटन के संबंध में है । सांविधानिक उपबंध में यह अपेक्षित नहीं है कि संसद् के ऐसे प्रत्येक सत्र का आह्वान किया जाए, जो कि राष्ट्रपति द्वारा आहूत करने के अनुसरण में उसका सत्र आरंभ होने के पश्चात् अपने ही कारणों से स्थगित कर दिया गया था । जब किसी सदन का सत्रावसान हो जाता है और उसके पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 85(2) के अधीन उसका आह्वान किया जाता है केवल तभी अनुच्छेद 87(1) के अधीन यथा-उपबंधित नए सत्र के प्रति निर्देश से राष्ट्रपति द्वारा विशेष अभिभाषण अपेक्षित होता है जिससे कि संसद् को उसके आह्वान के कारण बताए जा सकें । यदि कोई सत्र पूर्व वर्ष में अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जाता है और अगले वर्ष उसी सत्र की बैठकें फिर से आरंभ होती हैं तो ऐसे किसी विशेष अभिभाषण की आवश्यकता नहीं होती ।

16. अनुच्छेद 85 और 87 में इसलिए संशोधन किया गया था ताकि संसद् को वर्ष में दो बार आहूत न करने और प्रत्येक सत्र के आरंभ में राष्ट्रपति के विशेष अभिभाषण की सांविधानिक अपेक्षा को समाप्त किया जा सके । प्रस्तुत सांविधानिक स्थिति यह है कि अंतिम सत्र और आगामी सत्र के प्रथम दिन के बीच छह मास से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए । अब सदन का सत्रावसान वर्ष में एक बार किया जाता है और राष्ट्रपति प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में ही संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है ।

17. अनुच्छेद 87 में, जैसा कि वह मूल रूप में था, 'वर्ष के प्रत्येक सत्र' में राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए उपबंध था । वर्ष 1951 में हुए

प्रथम संशोधन द्वारा 'प्रत्येक सत्र' के स्थान पर 'प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र' शब्द रखे गए थे । प्रथम संशोधन द्वारा अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 में भी संशोधन किया गया था । डा. बी. आर. अम्बेडकर ने बहस में हस्तक्षेप करते समय अनुच्छेद 85 के संशोधन के संबंध में यह कहा था :–

> "......आह्वान शब्द के कारण, परिणाम यह है कि यद्यपि संसद् समय-समय पर स्थगित करके संपूर्ण वर्ष बैठकें कर सकेगी फिर भी यह कहा जा सकेगा कि संसद् का आह्वान एक बार न कि दो बार किया गया है । सत्रावसान अवश्य होना चाहिए जिससे कि नया सत्र हो सके । यह महसूस किया गया है कि इस कठिनाई को दूर किया जाना चाहिए और परिणामस्वरूप उसके प्रथम भाग का लोप किया गया था । इस उपबंध को कायम रखा जाता है कि जब कभी संसद् का सत्रावसान होता है, नया सत्र छह मास के भीतर बुलाया जाएगा ।
>
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

18. कौल और शकधर कृत प्रेक्टिस एंड प्रासिजर ऑफ पार्लियामेंट (पांचवां संस्करण, पृष्ठ 180 पर) में पूर्वोक्त संशोधन की पृष्ठभूमि दी गई है और यह मत व्यक्त किया गया है :–

> "संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा वर्तमान रूप में संशोधन किए जाने से पूर्व अनुच्छेद 87(1) में यह अपेक्षित था कि राष्ट्रपति प्रत्येक सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा । तद्नुसार, राष्ट्रपति ने अनंतिम संसद् के वर्ष 1950 में हुए तीन सत्रों में से प्रत्येक सत्र में अभिभाषण किया ।
>
> तीसरे सत्र के दौरान यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या अगला सत्र राष्ट्रपति के अभिभाषण से आरंभ होगा या क्या सत्र को 5 फरवरी, 1951 को पुनः अधिवेशन के लिए मात्र स्थगित कर दिया जाएगा जिससे राष्ट्रपति के अभिभाषण की आवश्यकता का निराकरण हो जाएगा । इस संबंध में, अध्यक्ष मावलंकर ने यह सुझाव दिया कि राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक सत्र में अभिभाषण करने की बजाय यह उपबंध किया जा सकता है कि वह प्रथम सत्र के आरंभ में अपना अभिभाषण करेगा (प्रथम संशोधन) विधेयक, 1951, उसने, जैसी कि प्रवर समिति ने रिपोर्ट दी है, इस प्रकार मत व्यक्त किया : "निस्संदेह, वास्तविक कठिनाई यह है कि इसमें (अभिभाषण में) इस सदन से बाहर कुछ तैयारी अंतर्वलित होती है जो कि प्रायः तकलीफदेह होती

है । सदस्यों को इस बात का पता है कि जब एक गाड़ी और छह घोड़े आते हैं तो उस प्रयोजनार्थ सभी प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है । तथापि, वह परेशानी सदन या उसके सदस्यों पर नहीं पड़ती बल्कि दिल्ली के प्रशासन पर पड़ती है" ।"

सत्रावसान और स्थगन के बीच अंतर :

19. **2002 का विशेष निर्देश सं. 1**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने संविधान के अनुच्छेद 85(2) का निर्वचन करते समय निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था :–

> "जब सदन का सत्रावसान किया जाता है तो सदन की सभी लंबित कार्यवाहियां अभिखंडित नहीं हो जाती है और लंबित विधेयक समाप्त नहीं हो जाते हैं । सदन का सत्रावसान या तो सदन के स्थगन के पश्चात् या उस समय जब कि सदन का अधिवेशन चल रहा हो, किसी भी समय हो सकता है । सदन के स्थगन में किसी भी सदन की बैठक या कार्यवाहियों का ऐसा स्थगन अनुध्यात है जिससे कि किसी अन्य विनिर्दिष्ट तारीख को उसे पुनः समवेत किया जा सके । किसी सत्र के चालू रहने के दौरान सदन को एक दिन या एक से अधिक दिनों के लिए स्थगित किया जा सकता है । सदन का स्थगन अनिश्चित काल के लिए भी होता है । जब किसी सदन को स्थगित किया जाता है तो लंबित कार्यवाहियां या विधेयक समाप्त नहीं हो जाते हैं ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

20. स्थगन एक और उसी सत्र के अनुक्रम में एक अल्पावकाश होता है जबकि सत्रावसान द्वारा सत्र समाप्त हो जाता है । सत्रावसान का प्रभाव संसद् में तब चालू सभी कार्यवाहियों को कतिपय अपवादों सहित समाप्त करना होता है ।

21. मे कृत पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस में, जिसने इस विषय पर एक उत्कृष्ट कृति की हैसियत धारण कर ली है और प्रायः संसदीय पद्धति की प्राधिकृत प्रतिपादना समझी जाती है, इस प्रकार कहा गया है :–

> "सत्र संसद् की बैठक, चाहे वह सत्रावसान या विघटन के पश्चात् हो, और उसके सत्रावसान के बीच की कालावधि होती है ।... किसी सत्र के दौरान कोई भी सदन स्वप्रेरणा से उतनी अवधि के

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 237.

लिए स्थगित कर सकता है जितनी वह चाहे । संसद् के सत्रावसान और नए सत्र में उसकी पुनः बैठक होने के बीच की अवधि को 'अल्पावकाश' कहा जाता है जबकि किसी सदन के स्थगन और उसकी बैठक पुनः आरंभ होने के बीच की अवधि को साधारणतया 'स्थगन' कहा जाता है ।"

22. कौल और शकधर कृत प्रेक्टिस एंड प्रासिजर ऑफ पार्लियामेंट में सांविधानिक स्थिति को और अधिक सारगर्भित रूप से इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि "लोक सभा के सत्र में वह अवधि शामिल होती है जो कि राष्ट्रपति के लोक सभा का आह्वान करने वाले आदेश में उल्लिखित तारीख और समय से आरंभ होती है और उस दिन को समाप्त होती है जिसको राष्ट्रपति लोक सभा का सत्रावसान या विघटन करता है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सदन का आह्वान करने वाले राष्ट्रपति के आदेश के निबंधनानुसार आरंभ होने वाला सत्र केवल उस दिन को समाप्त हो सकता है जिसको राष्ट्रपति सदन का सत्रावसान करता है या लोक सभा का विघटन करता है । उसी शोध ग्रंथ में तब से प्रचलित संसदीय पद्धति की अवेक्षा की गई है जो कि निम्नलिखित रूप में है :-

> "आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र तारीख 23 फरवरी, 1987 को आरंभ हुआ था और वह तारीख 12 मई, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था । तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था । अध्यक्ष ने, संसदीय कार्य मंत्री के प्रस्ताव पर लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के परन्तुक के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 27 जुलाई से 28 अगस्त, 1987 तक लोक सभा की बैठकें पुनः आरंभ करने के लिए सहमति दी । तारीख 12 मई, 1987 को लोक सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने से पूर्व और बाद वाले दोनों भागों को एक सत्र गठित करने वाला माना गया जिसे दो भागों, अर्थात् भाग 1 और 2 में विभाजित कर दिया गया था । आठवें सत्र का दूसरा भाग पूरा होने पर, लोक सभा तारीख 28 अगस्त, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी और तारीख 3 सितम्बर, 1987 को उसका सत्रावसान कर दिया गया था ।"

23. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब कभी सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने के पश्चात् पुनः आरंभ होता है तो उसका कार्य जारी रखने के प्रयोजनार्थ पुनः आरंभ होना सत्र के प्रारंभ होने की कोटि में

नहीं आता । इस मामले में, सदन की बैठक तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ होना वर्ष 2004 के प्रथम सत्र का आरंभ होने की कोटि में नहीं आता है ।

अध्यक्ष का निर्णयः

24. राष्ट्रपतीय अभिभाषण के बिना तारीख 29 जनवरी, 2004 को सदन का प्रथम सत्र बुलाने के औचित्य से संबंधित यही विवाद्यक सदन में उठाया गया था । अध्यक्ष ने यह घोषणा करते हुए निर्णय दिया कि संविधान के उपबंधों के अनुसार सदन का कोई सत्र तभी समाप्त होता है जब सदन का सत्रावसान कर दिया जाता है । चूंकि सदन को तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने के पश्चात् उसका सत्रावसान नहीं किया गया था इसलिए इस सत्र को, "इस तथ्य के होते हुए भी कि अब कलेंडर वर्ष बदल गया है", अधिक से अधिक तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के रूप में माना जा सकता है । तारीख 29 जनवरी, 2004 को बुलाए गए सत्र के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह शीतकालीन सत्र का दूसरा भाग है । अध्यक्ष का निर्णय इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"मंगलवार, 3 फरवरी, 2004/14 माघ, 1925(शक)

अध्यक्ष द्वारा निर्णय – (i) आज के आदेश-पत्र में 'लेखानुदान' को अंतरिम बजट के रूप में मानने; और (ii) वर्ष के प्रथम सत्र को 29 जनवरी, 2004 को राष्ट्रपतीय अभिभाषण के बिना बुलाने के औचित्य के संबंध में ।

अध्यक्ष ने, ... को सुनने के पश्चात् निम्नलिखित निर्णय दिया –

प्रारंभ में, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि अध्यक्ष के निर्णय सामान्यतः नियमों, नियम पुस्तिका और साथ-साथ भारत के संविधान के अनुसार होते हैं । कभी-कभी ऐसा घटित होता है कि अध्यक्ष को किसी मुद्दे पर निर्णय करना पड़ता है और इन परिस्थितियों में पूर्व-निर्णयों को ध्यान में रखा जाता है । यदि पूर्व-निर्णय उपलब्ध नहीं हैं तब पीठासीन अधिकारी को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है और उन मुद्दों पर निर्णय करना होता है जो उठाए जाते हैं । सौभाग्यवश, इस विशिष्ट मामले में हमारा मार्गदर्शन करने के लिए प्रक्रिया संबंधी नियम तथा परिभाषाएं विद्यमान हैं । मैंने एर्सकाइन में कृत पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस का

परिशीलन किया है । मैं यह चाहूंगा कि सदन उस निर्णय को सावधानीपूर्वक सुने जो कि मैं अब देने जा रहा हूं ।

प्रथमतः, मैं एर्सकाइन में के प्रतिनिर्देश करना चाहूंगा जिसने सौभाग्यवश 'सत्रावसान' पद की परिभाषा दी है । उसने यह कहा –

'सत्रावसान में एक सत्र समाप्त हो जाता है; स्थगन, एक और उसी सत्र के अनुक्रम में अल्पावकाश होता है ।'

इसलिए, यहां सत्रावसान के बारे में जो प्रश्न उठाया गया था वह इस परिभाषा द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है ।

....

किन्तु यह वह मुख्य मुद्दा नहीं है जो कि आज उठाया गया है । श्री सोमनाथ चटर्जी द्वारा उठाया गया मुख्य मुद्दा सत्र का आयोजन करने के बारे में था और यह मुद्दा इस सदन में श्री वरकाला राधाकृष्णन् और कुछ अन्य सदस्यों द्वारा 30 जनवरी, 2004 को भी उठाया गया था और माननीय संसदीय कार्य मंत्री ने सदस्यों द्वारा उस दिन उठाए गए मुद्दों का उत्तर दिया था । श्री सोमनाथ चटर्जी ने यह दलील दी है कि 29 जनवरी, 2004 को जो सत्र आरंभ हुआ था वह वर्ष का प्रथम सत्र था । मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि संविधान में सदन के अनिश्चित काल के लिए स्थगन का कोई उल्लेख नहीं है । संविधान के उपबंधों के अनुसार, सदन का कोई सत्र तब समाप्त हो जाता है जब सदन का सत्रावसान कर दिया जाता है । चूंकि सदन को तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने के पश्चात् उसका सत्रावसान नहीं किया गया था इसलिए इस सत्र को, इस तथ्य के होते हुए भी कि अब कलेंडर वर्ष बदल गया है, अधिक से अधिक तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के रूप में माना जा सकता है ।

मैं एक दृष्टांत दे रहा हूं : मैं तीसरी लोक सभा के संबंध में एक पूर्व-निर्णय दे रहा हूं । तारीख 11 दिसम्बर, 1962 को सदन तारीख 21 जनवरी, 1963 को अधिवेशन करने के लिए स्थगित कर दिया गया था ।

इसे उसी सत्र का भाग 2 माना गया था । मैं सदन को यह बताना चाहूंगा कि पूर्व में भी ऐसे अवसर आए हैं जब सदन को

अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने के पश्चात् लोक सभा सत्रावसान किए जाने से पूर्व पुनः बुलाई गई थी ।

......उदाहरणार्थ, आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र तारीख 12 मई, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था किन्तु सदन का सत्रावसान नहीं किया गया था.... और 75 दिनों के अंतराल के पश्चात् वह तारीख 27 जुलाई, 1987 को सत्र के दूसरे भाग के रूप में पुनः बुलाया गया था । इसी प्रकार, आठवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र तारीख 18 अगस्त, 1989 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था किन्तु सदन का सत्रावसान नहीं किया गया था और उसे 53 दिनों के अंतराल के बाद तारीख 11 अक्तूबर, 1989 को चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के रूप में पुनः बुलाया गया था ।

..... ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं । जब सदन स्थगित किया गया था और उसके पश्चात्, यद्यपि वह अगले वर्ष फिर से बुलाया गया था तथापि, इसे नया सत्र नहीं माना गया था, मैंने मामले के प्रतिनिर्देश पहले ही कर दिया है । अतः, मेरे लिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इस विशिष्ट मामले में भी इस सत्र को भी शीतकालीन सत्र के दूसरे भाग के रूप में माना जा सकता है ।

.... <u>मैंने बहस सुनने के पश्चात् इसे शीतकालीन सत्र के दूसरे भाग के रूप में माना है । चूंकि संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (2) के उप-खंड (क) के उपबंधों के अधीन सदन का सत्रावसान करने की शक्ति माननीय राष्ट्रपति में निहित है - कृपया यह याद रखें कि यह शक्ति माननीय राष्ट्रपति के पास है</u> - इसलिए मैं इस मुद्दे पर आगे कोई चर्चा अनुज्ञात करने के लिए तैयार नहीं हूं और मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि आदेश के दोनों मुद्दे आदेश से परे हैं ।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

25. इस रिट याचिका में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ है वह यह है कि क्या अध्यक्ष का वह विनिश्चय, जिसके द्वारा लोक सभा की बैठक, जो कि तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी, फिर से आरंभ करने का निदेश दिया गया था, भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए दायी है ? संविधान के अनुच्छेद 122 के अधीन

न्यायालय संसद् की कार्यवाहियों की जांच करने से प्रविरत है । अनुच्छेद 122 निम्नलिखित रूप में है :-

> "**122. न्यायालयों द्वारा संसद् की कार्यवाहियों की जांच न किया जाना** – (1) संसद् की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।
>
> (2) संसद् का कोई अधिकारी या सदस्य, जिसमें इस संविधान द्वारा या इसके अधीन संसद् में प्रक्रिया या कार्य संचालन का विनियमन करने की अथवा व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियां निहित हैं, उन शक्तियों के अपने द्वारा प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं होगा ।

26. अनुच्छेद 122 के पठन मात्र से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि संसद् की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा । रिट याचिका में यह प्रार्थना की गई है कि अध्यक्ष के निदेशाधीन जारी की गई तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना के अनुसरण में लोक सभा में हुई कार्यवाहियों को असांविधानिक घोषित किया जाए । याची आवश्यक रूप से लोक सभा में कार्यवाहियों की नियमितता और वैधता के बारे में विवाद उठा रहा है । यह विवाद आवश्यक रूप से इस प्रश्न पर केन्द्रित है कि क्या अध्यक्ष का तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित लोक सभा की बैठक फिर से आरंभ करने का निदेश देना उचित है ? अध्यक्ष सदन के विशेषाधिकारों का संरक्षक और सभी अवसरों पर उसका प्रवक्ता और प्रतिनिधि होता है । वह उसके नियमों और प्रक्रिया का निर्वचनकर्ता होता है और बहस के क्रम को नियंत्रित और विनियमित करने और व्यवस्था बनाए रखने की शक्ति उसमें निहित होती है । अध्यक्ष ने अपनी निहित शक्तियों के आधार पर लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम के नियम 15 के अधीन अपनी शक्ति के तात्पर्यित प्रयोग में, लोक सभा के महासचिव के माध्यम से तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना जारी कराई जिसके द्वारा लोक सभा की बैठकें जो कि 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी, फिर से आरंभ करने का निदेश दिया गया । यह आवश्यक रूप से पूर्णतः संसद् की प्रक्रिया से संबंधित मामला है कि अध्यक्ष के निदेशानुसार तारीख 29 जनवरी, 2004 को पुनः आरंभ हुई बैठकें चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के रूप में मानी जानी

थीं अथवा नहीं । सदन की बैठकें पुनः आरंभ करने के पश्चात् की गई कार्यवाहियों और किए गए कामकाज की वैधता की परीक्षा और जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन की गई किसी कार्यवाही में इस न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती ।

27. दो ऐसे अनुच्छेद हैं जिनके प्रतिनिर्देश अवश्य किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 118(1) में यह उपबंध है कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद् का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य संचालन के विनियमन के लिए नियम बना सकेगा । वास्तव में, ये नियम बनाए जाते हैं और इन्हें लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के रूप में जाना जाता है । लोक सभा प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के नियम 15 में यह उपबंध है कि :-

> "(1) अध्यक्ष वह समय अवधारित करेगा जब कि सदन की कोई बैठक अनिश्चित काल के लिए या किसी विशेष दिन के लिए या उसी दिन के किसी घंटे या भाग तक स्थगित की जाएगी :
>
> परन्तु अध्यक्ष, यदि वह उचित समझे तो सदन की बैठक, उस तारीख या समय से पूर्व जिस तक वह स्थगित की गई थी, या सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने के पश्चात् किसी भी समय बुला सकेगा ।
>
> (2) यदि सदन, स्थगित कर दिए जाने के पश्चात् उपनियम (1) के परन्तुक के अधीन फिर से बुलाया जाता है तो महासचिव प्रत्येक सदस्य को सत्र के अगले भाग की तारीख, समय, स्थान और उसकी अवधि संसूचित करेगा ।"

28. अनुच्छेद 118(1) से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि जब सदन को उसके द्वारा यथाविहित कोई नियम बनाना होता है तो वे नियम संविधान के उपबंधों के अधीन होते हैं जिनमें स्पष्ट रूप से संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकार भी आते हैं ।

29. इसी प्रकार, अनुच्छेद 122(1) में एक उपबंध किया गया है जो कि सुसंगत है । इसमें यह अधिकथित किया गया है कि संसद् की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा । अनुच्छेद 122(2) द्वारा संसद् के उन अधिकारियों और सदस्यों को, जिनमें इस संविधान द्वारा या इसके अधीन संसद् में प्रक्रिया या कार्य संचालन का विनियमन करने की अथवा

व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियां निहित हैं, उन शक्तियों के अपने द्वारा प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन होने से उन्मुक्ति प्रदान की गई है । इस न्यायालय ने **भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश**[1] वाले मामले में (जो कि **केशव सिंह** वाले मामले के रूप में भी जाना जाता है) अनुच्छेद 212(1) का अर्थान्वयन करते समय यह मत व्यक्त किया कि किसी नागरिक के लिए विधान मंडल के भीतर हुई किन्हीं कार्यवाहियों की विधिमान्यता को प्रश्नगत करना संभव हो सकेगा यदि उसका मामला यह है कि उक्त कार्यवाहियां मात्र प्रक्रिया की अनियमितता से नहीं किन्तु किसी अवैधता से ग्रस्त हैं । यदि आक्षेपित प्रक्रिया अवैध और असांविधानिक है तो उसकी संवीक्षा किसी न्यायालय में की जा सकेगी हालांकि ऐसी संवीक्षा तब प्रतिषिद्ध होती है यदि प्रक्रिया के विरुद्ध शिकायत इससे अधिक कुछ नहीं है कि प्रक्रिया अनियमित थी । यही सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 122 के निर्वचन के मामले में भी लागू होगा ।

30. तारीख 20 जनवरी, 2004 की सूचना स्वतः स्पष्ट है और यह प्रकट करती है कि सदन को अध्यक्ष द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया था । यह अध्यक्ष का ही निदेश है कि उसकी बैठकें 29 जनवरी, 2004 से आगे पुनः आरंभ की जाएं । सूचना में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि यह चौदहवें सत्र का दूसरा भाग है और इसके तारीख 5 फरवरी, 2004 को समाप्त होने की संभावना है । अध्यक्ष का सदन को तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने संबंधी विनिश्चय और भाग 2 में उसकी बैठकें पुनः आरंभ करने संबंधी निदेश का संबंध आवश्यक रूप से संसद् की कार्यवाहियों से है और वह प्रक्रियात्मक प्रकृति का है । न्यायालयों द्वारा अध्यक्ष के निदेशों के अनुसरण में उसकी बैठकें पुनः आरंभ करने के पश्चात् उसमें किए गए कार्य और उसकी कार्यवाहियों की विधिमान्यता की जांच नहीं की जा सकती ।

31. अनुच्छेद 122(2) के अधीन अध्यक्ष का विनिश्चय, जिसमें प्रक्रिया और कार्य के संचालन को विनियमित करने की शक्तियां निहित हैं, अंतिम होता है और सदन के प्रत्येक सदस्य पर बाध्यकर होता है । अध्यक्ष द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2003 को सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने संबंधी विनिश्चय और बाद में उसकी बैठकें पुनः आरंभ करने संबंधी

---

[1] [1965] 1 एस. सी. आर. 413.

निदेश की विधिमान्यता की जांच प्रक्रिया की किसी अनियमितता के आधार पर नहीं की जा सकती । न्यायालयों द्वारा अध्यक्ष के निदेशों के अनुसरण में सदन की बैठकें पुनः आरंभ करने के पश्चात् उसमें किए गए कार्य और उसकी कार्यवाहियों की विधिमान्यता की जांच नहीं की जा सकती । सदन के किसी सदस्य द्वारा कार्य के संचालन की प्रक्रिया में मात्र अनियमितता की शिकायत करके अध्यक्ष के किसी विनिश्चय को चुनौती नहीं दी जा सकती । ऐसे विनिश्चय किसी न्यायालय की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं होते और वे चुनौती से उन्मुक्त हैं जैसा कि **केशव सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में माना और स्पष्ट किया गया है और इसके बाद **इंदिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण और एक अन्य**[1] वाले मामले में स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि "सदन की आंतरिक कार्यवाहियों के प्रशासन में सदन न्यायालयों के नियंत्रण के अधीन नहीं होता है ।" संसद् के प्रत्येक सदन का यह अधिकार है कि वह अपनी कार्यवाहियों की विधिसंगतता का एकमात्र निर्णायक हो । न्यायालय संसद् के सदनों की कार्यवाहियों की विधिसंगतता के बारे में जांच नहीं कर सकते । संविधान का उद्देश्य विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच सही संतुलन बनाना है । सांविधानिक स्कीम का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक सांविधानिक अंग अपने-अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र के भीतर कृत्य करें । संक्षेपतः, भारत के संविधान के अनुच्छेद 122 में यही सांविधानिक तत्व-ज्ञान अंतर्निहित है ।

32. **एम. एस. एम. शर्मा** बनाम **डा. श्री कृष्ण सिन्हा**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य के विधान मंडल के भीतर हुई कार्यवाहियों की विधिमान्यता को इस अभिकथन के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता कि विधि द्वारा अधिकथित प्रक्रिया का सही-सही अनुपालन नहीं किया गया था । मुख्य न्यायमूर्ति सिन्हा ने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :-

> "यह दलील दी गई थी कि विधान मंडल के सदन के भीतर अपनाई गई प्रक्रिया नियमित नहीं थी और पूर्णतः विधि के अनुसार नहीं थी । इस दलील के दो उत्तर हैं, प्रथमतः, यह कि इस न्यायालय

---

[1] (1975) सप्ली. एस. सी. सी. 1.
[2] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 1186.

के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के अनुसार याची को वह मूल अधिकार प्राप्त नहीं है जिसका उसने दावा किया है । इसलिए, वह न्यायालय के बाहर है । द्वितीयतः, किसी राज्य के विधान मंडल के भीतर होने वाली कार्यवाहियों की विधिमान्यता को इस अभिकथन के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता कि विधि द्वारा अधिकथित प्रक्रिया का सही-सही अनुपालन नहीं किया गया था । संविधान के अनुच्छेद 212 में याची की ओर से दी गई दलील के इस भाग का पूरा उत्तर मिलता है । कोई भी न्यायालय उन प्रश्नों की जांच नहीं कर सकता जो कि स्वयं विधान मंडल की, जिसे अपने कार्य का संचालन करने की शक्ति प्राप्त है, विशेष अधिकारिता के भीतर आते हैं । संभवतः, याची की ओर से दी गई दलील के इस भाग का तीसरा उत्तर यह है कि प्रक्रिया के प्रश्न पर विचार करने का समय अभी नहीं आया है क्योंकि समिति को अभी अपनी कार्यवाहियां पूरी करनी हैं । यह भी मत व्यक्त किया जाना चाहिए कि जब यह अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि विधान मंडल को अपनी कार्यवाहियों के प्रकाशन को नियंत्रित करने और इस प्रश्न की जांच करने की अधिकारिता है कि क्या उसके विशेषाधिकारों का कोई भंग हुआ है तब विधान मंडल में अपनी कार्यवाहियों को अपने कार्य संबंधी नियमों के अनुसार चलाने की पूर्ण अधिकारिता निहित है । भले ही उसने अपने कार्य का संचालन करने के लिए अधिकथित प्रक्रियात्मक विधि की अपेक्षाओं का अनुपालन न किया हो तो भी यह संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का आधार नहीं हो सकता ।"

33. प्रस्तुत मामले में, किसी गारंटीकृत मूल अधिकार के अतिलंघन की कोई शिकायत नहीं की गई है और इसलिए न्यायिक पुनर्विलोकन के उस पैरामीटर और विस्तार के बारे में, जो कि सदन के किसी सदस्य के किसी गारंटीकृत मूल अधिकार के अतिलंघन की दशा में उपलब्ध हो सकता है, प्रश्न का विस्तार से वर्णन करना आवश्यक नहीं होगा ।

34. मामले का एक और पहलू भी है । संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई इस रिट याचिका में याची ने तारीख 29 जनवरी, 2004 से आरंभ हुई लोक सभा की कार्यवाहियों को इसमें इसके ऊपर कथित आधारों पर चुनौती दी है, जिस पर हमने पूर्ववर्ती पैराओं में विचार-विमर्श किया है । यह याचिका निष्फल हो गई है चूंकि लोक सभा भंग कर दी गई थी और उसके पश्चात् दो निर्वाचन कराए जा चुके हैं । इस

याचिका में उठाया गया मुद्दा पूर्णतः एक काल्पनिक प्रश्न है । पक्षकारों के बीच कोई वाद लंबित नहीं है । यह स्थापित पद्धति है कि यह न्यायालय उन मामलों के संबंध में विनिश्चय नहीं करता जो किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों के आधार पर अव्यावहारिक महत्व के होते हैं ।

35. **आर. एस. नायक** बनाम **ए. आर. अंतुले**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया था :–

> "हम उस संचित विवेक का पालन करना चाहते हैं जो कि इस न्यायालय की इस स्थापित प्रक्रिया की ओर फिर से अग्रसर हुआ है कि अव्यावहारिक प्रश्नों को विनिश्चित न किया जाए ।"

36. यद्यपि यह रिट याचिका, उठाए गए सांविधानिक विवाद्यकों को ध्यान में रखते हुए निष्फल हो गई है तथापि, हमने भारत के संविधान के अनुच्छेद 85 और 87 के निर्वचन से संबंधित प्रश्न पर विचार किया है ।

37. यह भी सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 32 में सांविधानिक उपचार के अधिकार की गारंटी दी गई है और इसका संबंध केवल संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रवर्तन से है और जब तक किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन का प्रश्न उद्भूत नहीं होता तब तक अनुच्छेद 32 लागू नहीं होता है । यह सुस्थापित है कि अनुच्छेद 32 के अधीन कोई याचिका तब तक कायम नहीं रखी जा सकती जब तक यह दर्शित नहीं कर दिया जाता कि याची का कोई मूल अधिकार है । **नार्दर्न कारपोरेशन** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह प्रासंगिक मताभिव्यक्ति की है कि जब कोई व्यक्ति इस बात की शिकायत करता है और यह दावा करता है कि विधि का अतिक्रमण हुआ है तो इसमें मूल अधिकार का भंग स्वतः ही अंतर्वलित नहीं होता क्योंकि इसके प्रवर्तन के लिए केवल अनुच्छेद 32 ही लागू होता है ।

38. हमने इस रिट याचिका में किए गए प्रकथनों और अभिकथनों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की है और यह पाया है कि इसमें संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटीकृत किसी मूल अधिकार के किसी अतिलंघन का उल्लेख मात्र भी नहीं है । हम इस सिद्धांत पर जोर देते हैं कि यह रिट याचिका इस आधार पर खारिज किए जाने योग्य है ।

---

[1] (1984) 2 एस. सी. सी. 183.

[2] (1990) 4 एस. सी. सी. 239.

39. तदनुसार, हमें इस रिट याचिका में कोई गुणागुण प्रतीत नहीं होता है और तदनुसार वह खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

ग्रो./अनू.